शोध मंथन Vol. XVI No.I Jan.- Mar. 2025 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Impact Factor 8.877 (SJIF)

राजस्थान में जयपुर शहर की पात्रकला : एक संस्कृति

प्राप्तिः 27.01.2025
स्वीकृतः 18.03.2025

5

अंजली
शोधार्थिनी (ललित कला विभाग),
महिला महाविद्यालय,
किदवई नगर, कानपुर
ईमेलsa_3607742@gmail.com

प्रो0 अंजू चौधरी
प्राचार्य
महिला महाविद्यालय,
किदवई नगर, कानपुर।

सारांश

राजस्थान का जयपुर क्षेत्र 'गुलाबी नगरी' के नाम से भी जाना जाता है। इस क्षेत्र की पात्रकला राजस्थान की समृद्ध संस्कृति धरोहर का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। जयपुर क्षेत्र की प्रसिद्ध पात्र कला को भारत में ब्लू पोट्री के नाम से जाना जाता है। इस कला का विकास जयपुर में राजा सवाई राम सिंह द्वितीय के शासन काल में हुआ तथा इस पात्रकला को फैलाने व ख्याति दिलाने का दर्जा जयपुर के प्रसिद्ध कलाकार कृपाल सिंह शेखावत को जाता है, क्योंकि उन्होंने इस विलुप्त पात्रकला को पूजर्जीवित करके एक नवीन आयाम दिया। कृपाल सिंह शेखावत ने अपने शिष्यों को इस कला का ज्ञान देकर वर्तमान समय में भी इस कला की संस्कृति और पारम्परिक धरोहर को जीवंत रखा तथा भारत में इस पात्रकला का उद्भव फारसी प्रभाव से हुआ तथा इसकी प्रसिद्धि मुगलों के शासन काल में हुई। इस पात्र कला को बनाने के लिए मिट्टी, धातु, पत्थर, काँच आदि का प्रयोग किया जाता है तथा इन पात्रों को सजाने के लिए विभिन्न रंगों व डिजाइनों का प्रयोग किया जाता है। जिन्हें पारम्परिक राजस्थान की रूपरेखा कहा जाता है।

मुख्य बिंदु

अलंकरण, संस्कृति, अभिव्यक्ति, सौन्दर्य, तत्त्व, भारतीय कला, जयपुर, मृदभाण्ड, मनुष्य, कलाकार।

प्रस्तावना

संसार की सभी प्राचीन परम्पराओं में भारतीय कला की परम्परा जीवित कला की एक विशिष्ट परम्परा मानी गयी है। इतिहासकारों ने भी भारतीय कला के प्रवाह का क्रम अनवरत बनाए हुए रखा है। भारतीय कला की विधियाँ श्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में ''भारतीय कला को दीर्घकालीन रूपों से सजी हुई कला'' माना गया है।[1] जिसने देश के प्रत्येक भू–भाग में अपना अर्ध्य अर्पित किया हुआ है। कला का इस रूप समृद्धि में अनेकों प्रकार के वर्णों ने भाग लिया तथा इसे कला की मूल प्रेरणा और अर्थव्यंजना मुख्यतः भारतीय ही रही है। जब भारतीय संस्कृति का प्रसार समुद्र और पर्वतय क्षेत्रों में हुआ तब भारतीय कला के अर्थ और उसके रूप भी उन देशों के लिए अग्रसर व बहुमूल्य साबित हो गये। भारतीय कला की अभिव्यक्ति करती है। कलाकारों के द्वारा कला का यही रूप सर्वाधिक जटिल बताया गया है और कहा

है कि भारतीय कला में अभिव्यक्ति का महत्व है। भारतीय कलाकारों ने जिस प्रकार बाह्य सौन्दर्य पर ध्यान केंद्रित किया ठीक उसी प्रकार इन कलाकारों ने आन्तरिक भावों पर भी बड़ी सुन्दरता से अंकन किया और भारतीय कला की इस अभिव्यक्ति में ही भारतीय कलाकारों का मन अधिक रम गया। यह अभिव्यक्ति ही मनुष्य की आन्तरिक आत्मा को शक्ति प्रदान करती है, जैसे बुद्ध की मूर्तियों में बुद्ध के मुख की द्रव, शक्ति इसका जीता जागता उदाहरण माना गया है।[2] भारतीय कला के लिए ना होकर आत्मस्वरूप के साक्षात्कार के दर्शन कराती है, जिससे मनुष्य परमत्व की ओर स्वयं उन्मुख हो जाता है और वह मनुष्य संसार जगत को इसका ज्ञान कराता है। ये कलाएँ भिन्न–भिन्न रूप में हैं जैसे कि मूर्ति कला व वस्तुकला।

राजस्थान का जयपुर शहर राजस्थान का एक प्रमुख क्षेत्र है। यह क्षेत्र प्राचीन काल से ही अपनी विशेषताओं से मण्डित भू–भाग रहा है। इस क्षेत्र की कला संस्कृति और वीरता ने अपनी एक पहचान बनायी हुई है। जिस कारण इस क्षेत्र की संस्कृति को एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया गया है। इस क्षेत्र की धरती शूरवीरों, दानवीरों, संतो, भक्ता, लोक देवताओं, लोक देवियों, शरणागत, वसलो तथा स्वाभिमान की रक्षार्थ प्राणों को होम देने वाले बलिदानों की धरती अर्थात् भूमि है।[3] इस क्षेत्र के इतिहास का सांस्कृतिक पक्ष प्रारम्भ से विशाल, प्रबल और व्यापक रहा हैं कला, साहित्य, दर्शन, धर्म, तथा विरासत के क्षेत्र में इस शहर ने अनेकों मानदण्ड स्थापित किये हुए है। इस क्षेत्र की कला ने अपने अद्‌भुत भावों के साथ–साथ काव्यात्मक भावनाओं का भी एक मनोवैज्ञानिक अंकन किया है। कलाकारों के आश्रय में रहकर पनपी यह कला परम्परा व धार्मिकता के माध्यम की अभिव्यक्ति करती है तथा दूसरी ओर इस कला ने सौन्दर्यात्मक भावों के कलाकारों को प्रभावित किया है। यह कला अनुभावों के प्रयोग से ही मृदाओं एवं चेष्टाओं के निरूपण की कला में सम्भव हो सकता है। चित्रकला के चित्रांकन में भाव की स्थिति अति महत्वपूर्ण मानी गयी है, जिस प्रकार काव्य को पढ़ने अथवा सुनने से रसानुभूति होती है। ठीक उसी प्रकार कलाकार के कार्य को देखने मात्र से ही मन को शांति के अभाव की प्राप्ति होती है। इस क्षेत्र में प्राचीन काल से ही अनेकों प्रकार की प्राचीन सभ्यताएँ पल्लवित एवं पुष्पित हुई है। यहाँ से मनुष्यों को प्रागैतिहासिक काल में संस्कृति होने के प्रमाण मिले हैं। पुरातात्विक शोध के माध्यम से पता चलता है कि इस क्षेत्र में अस्थिर, पंखर, कंकाल, हड्डियाँ और पाषाण के औजार व मृदभाण्ड आदि से अवधारणा की पुष्टि के साक्ष्य प्राप्त हुए है। कहा जाता है कि यहाँ पाषाण काल में मानव सभ्यता विद्यमान थी। मृदभाण्ड पात्रकला भारत वर्ष में दुनिया की सबसे प्रारम्भिक एवं प्राचीन कला है। जो हमें प्राचीन सिन्धु घाटी से प्राप्त हुई है।[4] प्राप्त प्रतिमाओं में मुहरे, मिट्‌टी के बर्तन, आभूषण, खेल–खिलौने, पकी हुई मिट्‌टी की मूर्तियाँ आदि शामिल हैं। यह सभ्यता प्राचीन काल में पनपी व फली–फूली और अपने पीछे मिट्‌टी के बर्तनों की कला कौशल के उल्लेखनीय उदाहरण हमारे लिए छोड़ गयी, इस सभ्यता से खोजे गये मिट्‌टी के बर्तन, मिट्‌टी से मण्डी हुई विविध कलाकृतियों को दर्शाते हैं। यहाँ से उत्खन्न स्थलों की खुदाई के बाद जो मृदभाण्ड प्राप्त हुई है। वह दो प्रकार के हैं–1. सादे मृदभाण्ड 2. चित्रित मृदभाण्ड।

यहाँ से प्राप्त चित्रित बर्तनों को लाल व काले मृदभाण्डों के रूप में भी जाना जाता है। क्योंकि इन बर्तनों की पृष्ठभूमि को रंगने के लिए लाल रंग का प्रयोग किया व काले रंग से इन बर्तनों के ऊपर डिजाइन व आकृतियों का चित्रांकन किया गया है।[5] इस सभ्यता से मिट्‌टी के छोटे व बड़े सभी आकार के मृदभाण्ड प्राप्त हुई है व इन पात्रों के हजारों टुकड़े भी इस सभ्यता से प्राप्त हुए हैं। इन प्राप्त टुकड़ों के माध्यम से ही इन बर्तनों की आकृति व आकार का पता चलता है।[6] पारम्परिक दृष्टि से मिट्‌टी के बर्तन बनाने की तकनीक भारतीय संस्कृति में गहराई से समायी हुई है। जिससे

इस कला कि अपनी एक विशिष्ठ पहचान बनी हुई है। बाद में यह कला प्रमुख अभ्यासों के द्वारा पात्रकला के रूप में दुनिया के सामने उजागर हुई। इस कला का निर्माण करने के लिए कलाकार मंडी हुई मिट्टी की लुगदी को चाक पर कुशलतापूर्वक रखकर उसे पात्र का रूप प्रदान करता है। इन बर्तनों में चाक के माध्यम से कलाकार विशिष्ठ आकार व प्रकार के बर्तनों का निर्माण करता है और इन पात्रों के माध्यम से ही कलाकार हमें हमारी संस्कृति के दर्शन कराता है।

राजस्थान रंग बिरंगी संस्कृति विविधताओं का राज्य माना गया है। इस क्षेत्र में विभिन्न–विभिन्न कला शैलियाँ विकसित हुई है तथा जयपुर की कलाओं के द्वारा ही भारतीय कला के विकास ओर प्रगति में एक नया मोड़ आया है। इस क्षेत्र की लोक कलाएँ जैसे– फड़ चित्रकला, मूर्तिकला, साझी, माण्डना आदि कलाओं में पात्र कला की भी अपनी एक भूमिका है। यह कला अपनी पारम्परिक कलाओं और शिल्पों के माध्यम से पात्रों के सौन्दर्य को बढ़ाने में महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र में पात्रकला बहुत ही लोकप्रिय है, क्योंकि इस क्षेत्र के पात्रों पर की गयी चित्रकारी व अलंकरण सामान्यतः सभी को अपनी ओर आकर्षित करते हैं।

राजस्थान का जयपुर शहर अपनी अद्वितीय स्थापत्य शैली, शाही महलों और किलों के साथ–साथ विभिन्न कला रूपों के लिए प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र की कला में परम्परा और आधुनिक कला का संगम देखने को मिलता है। जो देखने में आकर्षित लगता है। इस क्षेत्र की पात्रकला को भारत में ब्लू पोट्री के नाम से जाना जाता है। इस पोट्री की शुरुआत मिश्र में लगभग 5000 वर्ष पूर्व में हुई और तभी से ही इस पात्रकला की शुरूआत मानी जाती है। मिश्र के बाद इस कला का विकास ईरान, इराक तथा काबुल आदि क्षेत्रों में हुआ तथा ईरान (फारस) में इस का विकास समृद्ध परम्परा के रूप में देखा गया। ईरान के बाद इस पात्रकला ने अपनी एक छाप मुगल काल में भी छोड़ दी, जब यह कला मुगलों के सम्पर्क में आयी तब इस कला ने भारत में अपना प्रभाव डाला, भारत पर प्रभाव डालने के बाद इस पात्रकला में बहुत से परिवर्तन किये गये जिससे यह कहा जाता है कि इस पात्रकला का उद्भव फारस में हुआ और इसकी प्रसिद्धि मुगलों के शासन काल में हुई।

भारत में भारतीय संस्कृति का अपना एक अलग ही अस्तित्व रहा है। संस्कृति मनुष्य के जीवन की एक ऐसी अवधारणा है, जिसके बिना भारतीय कला का विकास होना असम्भव है। संस्कृति के माध्यम से ही मनुष्य अपने सम्पूर्ण जीवन को अग्रसर बनाए हुए है। मनुष्य अपने दैनिक जीवन के लिए जिस भोजन का सेवन करता है तथा जिन कपड़ों को वह धारण करता है तथा बोलने के लिए जिस भाषा का प्रयोग करता है और अपने शुभ कार्यों के लिए जिस भगवान (शक्ति) की वह उपासना करता है। ये सभी पहलू ही मनुष्य की भारतीय संस्कृति के पक्ष हैं। आस्था और सौन्दर्य बोध ये दो ऐसे तत्व हैं जो मनुष्य के अंदर प्रारम्भिक काल से ही पाये जाते हैं। आस्था और विश्वास के कारण ही मनुष्य के अंदर धर्म का बीजारोपण होता है। जिससे यह कहा जाता है कि यहाँ मानवीय आस्था में केवल प्रकृति के कुछ मूल तत्वों तक ही सीमित थी और यह अब कालंतर में अपने क्षेत्र बढ़ाती गई जिससे धर्म का विस्तार होता गया, तथा दूसरी और प्रकृति ने मनुष्य को अपने सौंदर्य से अपनी और आकर्षित किया तब मनुष्य अपने भावों को व्यक्त करने के लिए कला का सहारा लिया और तब से ही ये दोनों तत्व धर्म और सौन्दर्य उसके माध्यम से व्यक्त होने लगे।[7] यदि भारतीय संस्कृति को सरल भाषा में देखा जाए तो यह संस्कृति उस विधि की प्रतीती है। जिस में मनुष्य अपने प्रत्येक कार्य के लिए सोच विचार करता है। अर्थात् संस्कृति मनुष्य की एक जीवन शैली है। यहाँ मनुष्य एक

सामाजिक वर्ग के सदस्यों के रूप में अपने सम्पूर्ण कार्य को पूर्ण करता है। अतः उसके द्वारा सामाजिक ढाँचे के अनुरूप किए गये कार्य ही उसकी संस्कृति की पहचान होती है। इन्हीं कारणों के द्वारा मनुष्य की ये सभी उपलब्धियाँ संस्कृति की प्रतिती कही गयी है। जैसे–कला, संगीत,साहित्य, वस्तुकला, शिल्पकला, दर्शन, धर्म और विज्ञान आदि ये सभी पहलू ही हमारी भारतीय संस्कृति की ध रोहर को संजोए हुए है, जिससे हमें, हमारी संस्कृति का ज्ञान होता है।

आनन्द की अनुभूति करने वाली कला सृजना किसी भी मनुष्य की अतः सत्ता से सम्बद्ध एक ऐसी लक्ष्य अनमुखी (ध्येनिष्ठ) प्रक्रिया है। जो रसद्ववित कलाकारों के बाह्य प्रयत्न से ही सिद्ध हो पाती है। आत्मोपलब्धि आत्मविश्वास तथा आत्म–अभिव्यक्ति आदि कला के मूल स्त्रोत है।[8] तन्यता तथा तदाकर परिणीत की यह शक्ति ही कला को अन्य शास्त्रों तथा विधाओं से प्रथक करती है और यही उसकी चरम सार्थकता है। रसवत्ता और सौन्दर्य–सम्पन्नता कला के महत्वपूर्ण तत्व हैं। कला के विशेष मूल्यों का महत्व इस बात में है कि वह मनरूपी संसार और भूतमय जगत के मध्य में एक सेतु (पुल) है। जब मनुष्य इस कला रूपी सेतु पर चढ़ता है। तो उसे यह ज्ञात होता है कि कलाकारों ने राष्ट्रीय कला व संस्कृति के निर्माण में एक ओर कितना सोचा था तथा दूसरी ओर इसका कितना निर्माण किया है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार लेखकों द्वारा ग्रंथ लिखे गये हैं। वास्तु, मूर्ति एवं चित्र आदि ये सभी कलाएँ भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण श्रृंगार, कलात्मकता व सौन्दर्य के अंग है। ये सभी अंग भारतीय कला का सुन्दरता से निर्माण करने वाले तत्वों में एक है। किसी भी देश की संस्कृति की प्रगति को मापने के लिए वहाँ पर प्राप्त कला की स्थिति व कला का सौन्दर्य भी एक महत्वपूर्ण आधार है। अतः भारतीय कला के सम्पूर्ण स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वहाँ की संस्कृति का अध्ययन करना अनिवार्य है। कला को जाने बिना संस्कृति का पूर्ण ज्ञान होना असम्भव है।

जयपुर क्षेत्र में इस कला को फैलाने व ख्याति दिलाने का दर्जा जयपुर के कलाकार कृपाल सिंह शेखावत को जाता है।[9] जिन्होंने इस विलुप्त पात्र कला को पुनर्जीवित करके एक नवीन आयाम दिया और इस कला को जीवंत रखा। कृपाल सिंह शेखावत ने राज्य सरकार व भारतीय सरकार से पात्रकला को आर्थिक वित्तीय सहायता प्रदान कर संरक्षण दिलवाने व राष्ट्रीय पहचान दिलवाने का अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किया।[10] कृपाल सिंह के द्वारा पुनर्जीवित यह पात्र कला जयपुर क्षेत्र में ब्लू पोटरी के नाम से जानी जाती है।

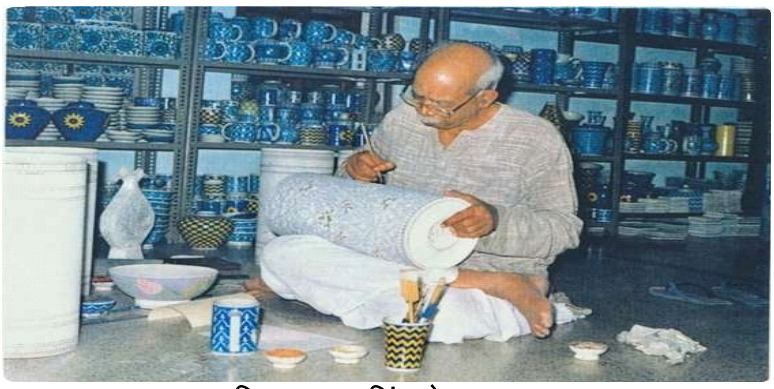

चित्र–कृपाल सिंह शेखावत

वर्तमान समय में यह पात्र कला जयपुर व उसके कई प्रतिष्ठानों में ही नहीं बल्कि उसके अलावा उसके आस–पास के अन्य स्थानों पर भी इस पात्रकला का अभ्यास किया जाने लगा। इस क्षेत्र के कोट जेवर गांव में इस कला को बनाने का निर्माण अत्यधिक रूप से किया जा रहा है और यह गांव अपनी ब्लू पॉटरी कला के लिए जाना जाता है। इस गांव ने ब्लू पोटरी के लिए अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में अपना नाम रोशन किया है।

जयपुर के कलाकारों ने इन पात्रों पर अधिकांशतः सफल अपेक्षित प्रभावशाली चित्रण किये हैं। इस शैली के पात्रों पर मुख्यतः नीले रंग का प्रयोग स्वच्छ रूप से देखने को मिलता है। लेकिन इस क्षेत्र की पात्रकला ने अपने स्वयं के डिजाइन और रूपांकन विकसित किये हैं। इस कला के कलाकारों ने मृदभाण्ड पात्रों पर जो चित्रांकन चित्रित किये हैं। वह प्राकृतिक से प्रेरित होकर किए हैं। जैसे–जानवर, पक्षी व फूल आदि का चित्रांकन करके इन पात्रों को सुन्दरता से सजाया है। जयपुर क्षेत्र के कलाकार अपने पात्रों की रचनाओं में फारसी, ज्यामितीय डिजाइन व फारसी सिरेमिक शैली के संकेत भी प्रदान करते हैं। मृदभाण्ड पात्रों पर नीले शीशे का प्रयोग एक आयतित तकनीक है। नीले शीशे की तकनीक के कारण ही जयपुर की पात्रकला की अपने एक नवीन पहचान है।[11] जिस कारण यह पात्रकला अत्यंत विख्यात है, यह तकनीक इस क्षेत्र में सर्वप्रथम मंगोल कारीगरों के द्वारा विकसित की गयी थी। जिससे मंगोल कारीगरों ने इस चीनी ग्लेजिंग तकनीक को फारसी सजावटी कलाओं के साथ जोड़ा।

चित्र–जयपुर की ब्लू पॉटरी

नीली मिट्टी के बर्तन जयपुर में शासक सवाई राम सिंह द्वितीय के शासन काल के तहत आये सवाई राम सिंह ने अपने शासन काल में जयपुर क्षेत्र की इस पात्रकला को समर्पण भाव से आगे बढ़ाया, जिससे यह पात्र कला जयपुर में ब्लू पॉटरी के नाम से प्रसिद्ध हुई, इस कला की ओर अत्यधिक प्रसिद्धि के लिए राम सिंह द्वितीय ने दिल्ली के चूड़ामल व भोला इन दोनों कलाकार भाईयों को जयपुर में रहने के लिए आमंत्रित किया और उनसे इस कला को आगे बढ़ाने के लिए कहा, उसके बाद इस मृदभाण्ड पात्रकला ने अपने मौलिक नवाचार इस तरह से पेश किए कि इस कला के कलाकार अपने क्षेत्र में इतने निपुण हो गये कि उनकी ख्याति सम्पूर्ण विश्व में फैल गयी और इस पात्र कला को दिल्ली की पात्र कला से भी अधिक सराध्या गया जिस कारण यह पात्रकला वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व में ख्याति बटोर रही है और विदेशी कला मर्मज्ञों को अपनी ओर आकर्षित करती है।

संदर्भ

1. अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला।
2. अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला।
3. जैन, प्रो0 रमेश शर्मा, डॉ0 कैलाश, राजस्थान की संस्कृति परम्पराएँ एवं विरासत, प्रकाशन मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, 2018।
4. प्रताप, डॉ0 रीता, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास प्रकाशन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ, अकादमी, जयपुर।
5. सिंघानिया, नितिन, भारतीय कला की संस्कृति, प्रकाशन, M.C Graw Hill Education.
6. सिंघानिया, नितिन, भारतीय कला की संस्कृति, प्रकाशन, M.C Graw Hill Education.
7. स्मारिका, उत्तर प्रदेश, ललित कला अकादमी, लखनऊ।
8. अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला।
9. Blue Pottery, Skill Manual Grade VI
10. Blue Pottery, Skill Manual Grade VI
11. जयपुर की नील मृदभाण्ड, Online site, hi.m.wikipedia.org